देवेन्द्र व अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

क्रिमिनल अपील संख्या 940/2009

6 मई 2009

**[न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा व न्यायमूर्ति डॉ. मुकुन्दकम शर्मा]**

*दंड संहिता, 1860 -धाराऐं 420, 467, 468 और 469 -अपने शेयरों की सीमा के संबंध में सह-हिस्सेदारों के बीच सिविल मुकदमेबाजी - एक पक्ष ने मुकदमे की संपत्ति का एक हिस्सा तीसरे पक्ष को बेच दिया- अन्य वाद पक्ष ने धोखाधड़ी और कूट रचना का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज कार्यवाही - एफआईआर दर्ज की गई -एफआईआर को रद्द करने की याचिका खारिज की गई -अन्वेषण के उपरांत मजिस्ट्रेट ने प्रसंज्ञान लिया -आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की याचिका खारिज -अपील में, अभिनिर्धारित कियाः स्वामित्व का दावा करने वाली संपत्ति की विक्रय विलेख/डीड का निष्पादन, जिसके लिए विक्रेता हकदार नहीं था, नहीं होगा, तथ्यों के आधार पर, यह धोखाधड़ी या कूट रचना नहीं है - कार्यवाही रद्द किये जाने योग्य थी - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482.*

*रेस जूडिकेटा - की प्रयोज्यता - अभिनिर्धारितः रेस जूडिकेटा का सिद्धांत आपराधिक कार्यवाही में लागू नहीं होता है - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 11*

**सह-हिस्सेदारों के बीच उनके संबंधित शेयरों की सीमा के संबंध में मुकदमेबाजी के लम्बित होने के दौरान, सह-हिस्सेदारों में से दो (अपीलकर्ता नंबर 1 और 2) ने संपत्ति का एक हिस्सा तीसरे पक्ष को बेच दिया। अन्य सह-हिस्सेदार (प्रत्यर्थी नंबर 2) ने विक्रय विलेख/डीड को रद्द करने की मांग करते हुए एक दावा/मुकदमा दायर किया, जो अभी भी लंबित है।**

**इसके बाद प्रत्यर्थी नंबर 2 ने शिकायत दर्ज कराई जिसके परिणामस्वरूप एफआईआर दर्ज की गई। अपीलकर्ताओं के एफआईआर को रद्द करने के आवेदन को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। जांच के बाद, उनके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया और सीजेएम ने भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं 420, 467, 468 एवं 469 के तहत अपराधों का प्रसंज्ञान लिया। अपीलकर्ताओं की सीजेएम के आदेश को चुनौती देने वाली एक और याचिका को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दी थी। इसलिए वर्तमान अपील की गई।**

**न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित कियाः**

**1. सिविल दोष और क्रिमिनल दोष के बीच अंतर किया जाना चाहिए। जब पक्षों के बीच विवाद केवल एक सिविल दोष है तथा क्रिमिनल दोष नहीं है, तो न्यायालय किसी व्यक्ति को परेशान किये जाने की**

**अनुमति नहीं देंगी, जबकि अपराध का प्रसंज्ञान लेने का कोई मामला नहीं बनता है। [पैरा 29] [887-सी-डी]**

**2. वर्तमान मामले में, यह कहना सही नहीं है कि जिस संपत्ति पर स्वामित्व का दावा करने वाले विक्रय विलेख/डीड के निष्पादन जिसके लिए की अपीलकर्ता हकदार नहीं थे, के कारण शिकायतकर्ता-प्रत्यर्थी को धोखा दिया गया था। अपीलकर्ताओं ने शिकायतकर्ता को कोई अभ्यावेदन नहीं दिया था। शिकायतकर्ता और अपीलकर्ताओं के द्वारा तथा उनके बीच कोई अनुबंध और/या लेनदेन नहीं किया गया था। [पैरा 21] [881-डी-ई]**

वी.वाई. जोस बनाम गुजरात राज्य व अन्य। (2009) 3 एससीसी 78- संदर्भित।

**3. शुरूआत से ही दुर्व्यपदेशन धोखाधड़ी के अपराध की रचना के लिए एक अनिवार्य शर्त है, हालांकि कुछ मामलों में, अनुबंध के गठन के बाद के चरण में धोखा देने का इरादा विकसित हो सकता है। [पैरा 22] [882-ई]**

हृदय रंजन प्रसाद वर्मा व अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य. (2000) 4 एससीसी 168; इंडियन ऑयल कारपोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य (2006) 6 एससीसी 736; वीर प्रकाश शर्मा बनाम अनिल कुमार अग्रवाल व अन्य 2007 (9) एससीएएलई 502; वी.वाई. जोस बनाम गुजरात राज्य व अन्य (2009) 3 एससीसी 78;

रवीन्द्र कुमार मधनलाल गोएनका व अन्य बनाम एम/एस रुग्मिनी राम राघव स्पिनर्स व अन्य 2009 (6) एससीएएलई 162 -संदर्भित।

**4. कूट रचना की परिभाषा के मद्देनजर, कोई भी मिथ्या दस्तावेज बनाना अनिवार्य शर्त है। आईपीसी की धारा 464 में यह निर्दिष्ट है कि एक मिथ्या दस्तावेज बनाना क्या होता है। इसलिए, किसी दस्तावेज़ को इस आशय से निष्पादित करना आवश्यक है कि यह विश्वास दिलाया जाए कि ऐसा दस्तावेज़ अन्य बातों के साथ उस व्यक्ति के प्राधिकार द्वारा बनाया गया जिसके द्वारा या जिसके प्राधिकार द्वारा वह जानता है कि यह नहीं बनाया गया था। अपीलकर्ता संपत्ति के मालिक हैं। उन्होंने एक विक्रय विलेख/डीड निष्पादित किया है। विक्रय विलेख के निष्पादन से इनकार नहीं किया गया है। यदि कोई उक्त विक्रय विलेख/डीड में किए गए झूठे दावों से व्यथित है, तो वह विक्रेता होगा, न कि सह-हिस्सेदार। अपीलकर्ताओं पर कोई झूठा दस्तावेज़ बनाने का दोषी होने का आरोप नहीं लगाया गया है। [पैरा 23 और 24] [883-जी-एच; 884-ए-डी]**

**5. उच्च न्यायालय सामान्यतः सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा, यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, भले ही यदि दिये गये अंकित मूल्य तथा उनकी सम्पूर्णता में सही माने हों, तब भी कोई अपराध नहीं बनाते है। जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप या अनुसंधान के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के तत्वों को संतुष्ट नहीं करते हैं, तो उच्चतर न्यायालय बिना**

किसी कारण के आपराधिक न्यायालय में किसी व्यक्ति के उत्पीड़न को प्रोत्साहित नहीं करेंगी। [पैरा 26] [886-ई-एफ- ई]

6. उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने से इनकार कर दिया है क्योंकि उसके लिए एक अलग मानक लागू करना आवश्यक था। हालाँकि, जब सामग्री एकत्र की जाती है और उसके आधार पर आरोप पत्र दायर किया जाता है, जिसके आधार पर मजिस्ट्रेट अपराध का प्रसंज्ञान लेता है, तो इससे कार्यवाही के एक नये वाद कारण का उदय होगा। अनुसंधान अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र के आधार पर किसी अपराध का प्रसंज्ञान लेने और/या शिकायत याचिका पर समन जारी करने का निर्देश देने वाला आदेश, निर्विवाद रूप से, सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को आकर्षित करेगा, यदि उसके आह्वान के लिए कोई मामला बनाना पाया गया है। [पैरा 28] [887-ए-बी]

7. यह तर्क देना सही नहीं है कि उच्च न्यायालय का पिछला आदेश रेस जूडिकेटा के रूप में लागू होगा। आपराधिक कार्यवाही में रेस जूडिकेटा का सिद्धांत लागू नहीं होता है। सीपीसी की धारा 11 में बताए गए रेस जूडिकेटा के सिद्धांत या उसके सामान्य सिद्धांत इस प्रकृति के मामले में लागू नहीं होंगे। [पैरा 27] [886-जी-एच]

8. किसी मामले में सिविल दावा एवं आपराधिक कार्यवाही साथ में भी कायम रहेगी। वे एक साथ चल सकते हैं। एक कार्यवाही का परिणाम

**दूसरी कार्यवाही में उसके समक्ष मुद्दे का निर्धारण करने वाली न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होगा। [पैरा 20] [880-एच; 881-ए]**

पी. स्वरूपा रानी बनाम एम. हरि नारायण उर्फ हरि बाबू एआईआर 2008 एससी 1884 (2008) 5 एससीसी 765 - पर आश्रय किया।

सेठ रामदयाल जाट बनाम लक्ष्मी प्रसाद 2009 (5) एससीएएलई 527 - संदर्भित।

**9. यदि अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में विक्रय का एक विलेख/डीड निष्पादित किया था, जिसमें कहा गया कि उनके पास पूरी संपत्तियों पर एक तिहाई हिस्सा है, तो यह शिकायतकर्ता-प्रत्यर्थी पर बाध्यकारी नहीं होगा। यदि सह-हिस्सेदार के हाथों या तीसरे पक्ष के हाथों बेदखली के खतरे के कारण कार्यवाही का कोई वाद कारण उत्पन्न होता है, तो हमेशा कानूनी कार्यवाही का सहारा हमेशा लिया जा सकता है। यहां तक कि इस उद्देश्य के लिए, सी.आर.पी.सी. की धाराऐं 144 एवं 145 के तहत एक कार्यवाही संधारणीय होगी। इस प्रकृति के मामले में आपराधिक न्यायालय का निर्णय सिविल न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होगा। [पैरा 18] [880-सी-ई]**

शांति कुमार पांडा बनाम शकुंतला देवी (2004) 1 एससीसी 438- पर आश्रय किया।

ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल व अन्य। (1999) 8 एससीसी 686; कमलादेवी अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य व अन्य. (2002) 1 एससीसी 555 - संदर्भित।

**10. इस प्रकृति के मामले में जहां आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध का प्रसंज्ञान लेने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के लिए आरोप पत्र की विषयवस्तु पर अपना विवेक लगाना अनिवार्य था। उनकी ओर से इस तरह अपने विवेक का इस्तेमाल आदेश से प्रतिबिंबित होना चाहिए। [पैरा 30] [887-ई]**

कर्नाटक राज्य व अन्य बनाम पादरी पी. राजू (2006) 6 एससीसी 728; पवन कुमार शर्मा बनाम उत्तरांचल राज्य, क्रिमीनल अपील संख्या 1692/2007 - संदर्भित।

**केस कानून संदर्भ**

| | | |
|---|---|---|
| **(2004) 1 एससीसी 438** | **पर आश्रय किया** | **पैरा 19** |
| **एआईआर 2008 एससी 1884** | **पर आश्रय किया** | **पैरा 20** |
| **2009 (5) एससीएएलई 527** | **संदर्भित** | **पैरा 20** |
| **(2009) 3 एससीसी 78** | **संदर्भित** | **पैरा 22** |
| **(2000) 4 एससीसी 168** | **संदर्भित** | **पैरा 22** |
| **(2006) 6 एससीसी 736** | **संदर्भित** | **पैरा 22** |
| **2007 (9) एससीएएलई 50** | **संदर्भित** | **पैरा 22** |

| | | |
|---|---|---|
| **2009 (6) एससीएएलई 162** | **संदर्भित** | **पैरा 22** |
| **(1999) 8 एससीसी 686** | **संदर्भित** | **पैरा 25** |
| **(2002) 1 एससीसी 555** | **संदर्भित** | **पैरा 25** |
| **(2006) 6 एससीसी 728** | **संदर्भित** | **पैरा 30** |
| **1692/2007** | **संदर्भित** | **पैरा 30** |

क्रिमीनल अपीलीय क्षेत्राधिकारः क्रिमीनल अपील संख्या 940/2009

क्रिमीनल विविध अपील संख्या 8339/2006 में माननीय उच्च न्यायालय इलाहबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 21.01.2008 से।

एस.आर. सिंह अर्चना सिंह, अभिष्ठ कुमार, अपीलार्थी की ओर से।

रत्नाकर दास, सावित्री पाण्डे, राजीव कुमार, कमलेन्द्र मिश्रा, मोना राजवंशी, अनुराग कश्यप, कमलदीप, प्रत्यर्थी की ओर से।

**न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा** द्वारा न्यायालय का निर्णय सुनाया गयाः

1. याचिका अनुमत।

2. यहाँ यह प्रश्न है कि क्या एक शुद्ध सिविल विवाद भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 और 469 के तहत आपराधिक कार्यवाही का विषय हो सकता है।

यह निम्नलिखित तथ्यात्मक मैट्रिक्स में उत्पन्न होता हैः

3. पार्टियाँ सह-हिस्सेदार हैं। परिवार का वंशावली वृक्ष इस प्रकार हैः-

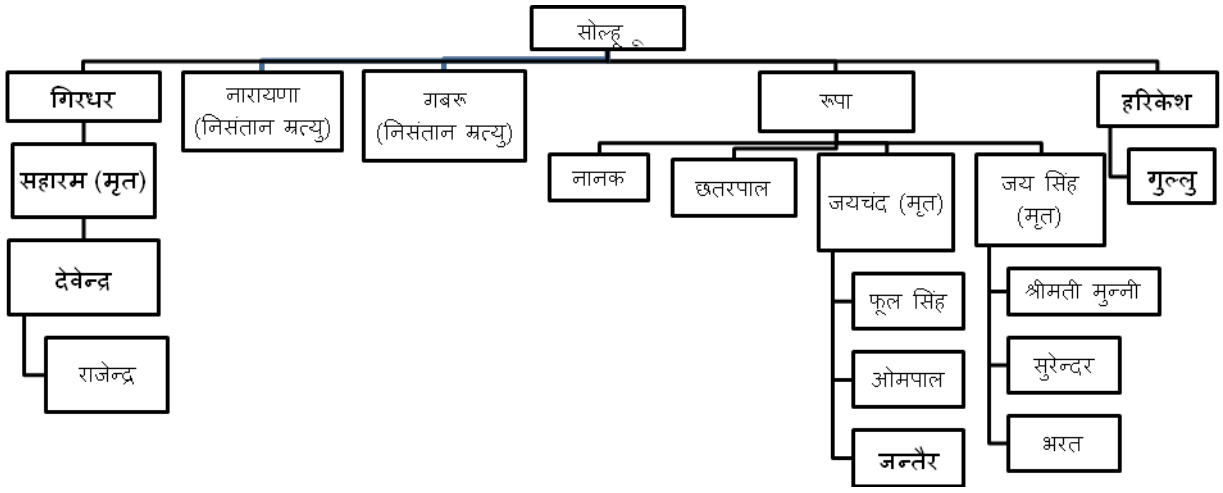


4. सोल्हू के पांच बेटे थे जो कि गिरधर, नारायणा, गबरू, रूपा तथा हरिकेश। अपीलकर्ता नंबर 1 तथा 2, गिरधर के पोते हैं। निर्विवाद, गबरू निःसंतान मर गया। अपीलकर्ताओं के अनुसार, संयुक्त परिवार में नारायणा की हिस्सेदारी, जिनकी निःसंतान मृत्यु हो गई, तीन जीवित भाइयों, गिरधर, रूपा और हरिकेश के बीच हस्तांतरित हो गई। हालाँकि, प्रत्यर्थी संख्या 2 के अनुसार, नारायणा का हिस्सा रूपा तथा हरिकेश के बीच हस्तांतरित हो गया।

5. 17.03.1982 को या उसके आसपास, हरिकेश के बेटे गुल्लू ने अपने 1/3 हिस्से के बंटवारे के लिए अतिरिक्त उपखंड अधिकारी, परगना के समक्ष मुकदमा दायर किया, जिसकी मुकदमा संख्या 135/1982 थी। आदेश दिनांक 24.11.1983 द्वारा, उक्त मुकदमे को यह कहते हुए डिक्री किया गया थाः

"1. विवादित भूमि में वादी गुल्लू का 1/4 हिस्सा है।

2. विवादित भूमि में प्रतिवादी देवेन्द्र एवं राजेन्द्र का 1/4 वा हिस्सा है।

3. विवादित भूमि में प्रतिवादी जयसिंह, छतरपाल, नानकचंद तथा जयचंद का 1/2 हिस्सा है।''

6. गुल्लू ने इसके विरुद्ध आयुक्त, मेरठ उपखण्ड के समक्ष अपील दायर की। दिनांक 19.03.1984 के एक आदेश द्वारा, उक्त डिक्री को यह मानते हुए संशोधित किया गया कि संयुक्त परिवार में 3/8 वा हिस्सा रूपा के पुत्रों, अर्थात जय सिंह, छतर पाल, नानकचंद और जयचंद का था। उक्त आदेश से व्यथित होकर, रूपा के बेटे जय सिंह ने राजस्व बोर्ड के समक्ष अपील दायर की, जिसमे 21.10.1985 के एक आदेश से अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.03.1984 को रद्द कर दिया और अतिरिक्त उपखण्ड अधिकारी के दिनांक 24.11.1983 के आदेश की पुष्टि की।

7. इससे व्यथित होकर, गुल्लू ने उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल विविध रिट याचिका संख्या 17667/1985 दायर की जिसमें अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 को पक्षकार नहीं बनाया गया था। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 07.11.1985 द्वारा, नोटिस जारी करते हुए, राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.10.1985 के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी।

8. 22.08.1997 को या उसके आसपास, अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 द्वारा अपीलकर्ता संख्या 3 व 4 के पक्ष में एक विक्रय विलेख/डीड निष्पादित किया गया था।

9. 24.08.2005 को, प्रतिवादी संख्या 2 व अन्य द्वारा उपरोक्त विक्रय विलेख/डीड दिनांकित 22.08.1997, को रद्द करने के लिए एक मुकदमा दायर किया गया था, जो कि सिविल सूट संख्या 382/2005 के रूप में दर्ज था। उक्त मुकदमा विद्वान सिविल जज (जूनियर डिविजन) गाजियाबाद के न्यायालय में अभी भी लंबित है। उक्त मुकदमे में, हालाँकि, यह सिद्ध किया गया था कि सोल्हू के चार बेटे थे, जबकि मुकदमा संख्या 135/1982 में यह कहा गया था कि सोल्हू के पाँच बेटे थे।

10. अपीलकर्ताओं ने उप जिला मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी) गाजियाबाद के न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 9 नियम 13 के तहत के मुकदमा संख्या 135/1982 को खारिज करने की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दायर किया। अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 17669/1985 में पक्षकार बनाने के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया था।

11. 21.09.2005 को या उसके आसपास, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने पुलिस स्टेशन, कविनगर, गाजियाबाद में एक आवेदन दायर किया, जिसमें सिटी मजिस्ट्रेट ने एक आदेश दिनांक 17.09.2005 द्वारा शिकायतकर्ता को सुनने और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का आदेश पारित किया। इसके बाद,

प्रत्यर्थी संख्या 2 ने 21.09.2005 को पुलिस स्टेशन, साहनी गेट में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई।

12. अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए एक आवेदन दायर किया। इसे क्रिमिनल विविध रिट याचिका संख्या 10568/2005 के रूप में चिह्नित किया गया था। दिनांक 17.10.2005 के एक आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने उक्त आवेदन को खारिज करते हुए निर्देश दियेः

> ''5. अनुसंधान अधिकारी उस तारीख से तीन महीने के भीतर अनुसंधान समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करेगा जिस दिन उसे इस आदेश के प्रमाणित आदेश की तामील हुई होगी।''

इसके बाद अनुसंधान शुरू किया गया। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

13. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 20.02.2006 के एक आदेश द्वारा अपराध का प्रसंज्ञान लिया। इसके समर्थन में कोई कारण नहीं बताया गया।

14. उक्त आदेश की वैधता पर प्रश्न उठाते हुए अपीकर्ताओं ने दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 482 के तहत एक और आवेदन दायर किया, जो आक्षेपित निर्णय के कारण, खारिज कर दिया गया है।

15. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री एस.आर. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत कियाः

(1) विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपराध का प्रसंज्ञान लेते हुए कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया, उच्च न्यायालय को यह मानना चाहिए था कि उक्त स्व-विवेक का बिल्कुल उपयोग नहीं करने से ग्रसित था।

(2) इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए कि क्या अपीलकर्ताओं के पास एक तिहाई या एक चौथाई हिस्सा है तथा एक सिविल मुकदमा लंबित है, आदेश दिनांक 17.10.2005 को कायम नहीं रखा जा सकता था।

16. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित श्री रत्नाकर दास, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता - दूसरी ओर, राज्य यह प्रस्तुत करेगा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 463 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, कूट रचना करने के लिए अपराध बनना माना जाना चाहिए।

शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

17. यह तथ्य कि अपीलकर्ता सह-हिस्सेदार हैं, विवाद में नहीं है। उनके बीच विवाद उनसे संबंधित शेयरों की सीमा तक ही सीमित है। यह केवल एक सिविल मुकदमे में ही निर्धारित किया जाना चाहिए।

18. यदि अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में विक्रय का एक विलेख/डीड यह कहते हुए निष्पादित किया कि उनके पास पूरी संपत्तियों पर एक तिहाई हिस्सा है, तो यह शिकायतकर्ता - प्रत्यर्थी पर

बाध्यकारी नहीं होगा। यदि सह-हिस्सेदारों या तीसरे पक्षों के हाथों बेदखली के खतरे के कारण कार्यवाही का कोई वाद कारण उत्पन्न हुआ, जैसा कि तर्क दिया गया था, तो कानूनी कार्रवाई का सहारा हमेशा लिया जा सकता है। यहां तक कि इस उद्देश्य के लिए, सी.आर.पी.सी. की धाराऐं 144 एवं 145 के तहत एक कार्यवाही संधारणीय होगी। इस प्रकृति के मामले में आपराधिक न्यायालय का निर्णय सिविल न्यायलय पर बाध्यकारी नहीं होगा।

19. शांति कुमार पांडा बनाम शकुंतला देवी ख्(2004) 1,एससीसी 438 में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

> ''(3) एक आपराधिक न्यायालय का निर्णय सिविल न्यायालय को बाध्य नहीं करता है जबकि सिविल न्यायालय का एक निर्णय आपराधिक न्यायालय को बाध्य करता है। संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही में कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश आपराधिक न्यायालय का आदेश है और वह भी एक संक्षिप्त जांच के आधार पर। आदेश सम्मान करने योग्य तथा अंतरिम चरण में सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रतीक्षा करने योग्य है। अधिकारों के अंतिम निर्णय के चरण में, जो न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों पर होगा, मजिस्ट्रेट का आदेश साक्ष्य के कई हिस्सों में से केवल एक है।''

20. हालाँकि, इसमें कोई संदेह या विवाद जो भी हो, नहीं हो सकता है कि दिये गये मामले में एक सिविल मुकदमा, एक आपराधिक कार्यवाही के रूप में चलने योग्य होगा। वे एक साथ चल सकते हैं। एक कार्यवाही के परिणाम दूसरी कार्यवाही में उसके समक्ष मुद्दे का निर्धारण करने वाली न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होगा।

पी. स्वरूपा रानी बनाम एम. हरि नारायण उर्फ हरि बाबू [एआइआर 2008 एससी 1884 (2008) 5 एससीसी 765], में कानून बताया गया, इस प्रकारः

> ''13. हालाँकि, यह अच्छी तरह से तय है कि किसी दिए गए मामले में, सिविल कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही साथ-साथ आगे बढ़ सकती है। चाहे सिविल कार्यवाही या आपराधिक कार्यवाही रोकी जाएगी यह तथ्य और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।''

[सेठ रामदयाल जाट बनाम लक्ष्मी प्रसाद, 2009 (5) एससीएएलई 527 भी देखें]

21. हालाँकि, यह प्रस्तुत किया गया था कि जिस संपत्ति पर अपीलकर्ता हकदार नहीं थे, उस पर स्वामित्व का दावा करने वाले विक्रय विलेख/डीड के निष्पादन के कारण, शिकायतकर्ता - प्रतिवादी को धोखा दिया गया था। उक्त तर्क को स्वीकार करना कठिन है। अपीलकर्ताओं ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को कोई अभ्यावेदन नहीं दिया था। शिकायतकर्ता और

अपीलकर्ताओं के द्वारा और के बीच कोई अनुबंध और/या लेनदेन शामिल नहीं किया गया था।

22. भारतीय दण्ड संहिता की धारा 415 में 'छल' को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थः

> '' छल - जो भी कोई, किसी व्यक्ति को धोखा देकर उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार धोखा दिया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करता है कि वह सम्पत्ति किसी व्यक्ति को सौंप दे, या ये सहमति दे दे कि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को रखे या साषय उस व्यक्ति को, जिसे धोखा दिया गया है, उत्प्रेरित करता है कि वह ऐसा कोई कार्य करे या करने का लोप करे, जिसे वह नहीं करता या करने या का लोप ना करता, यदि उसे इस प्रकार धोखा ना दिया गया होता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक, प्रतिष्ठा या सम्पत्ति का नुकसान या क्षति कारित होती है, या कारित हो सकती है, उसे ''छल'' करना कहा जाता है।''

वी.वाई. में जोस बनाम गुजरात राज्य व अन्य [(2009) 3 एससीसी 78] में, इस न्यायालय ने राय दीः

''यह नहीं कहा जा सकता कि छल का अपराध किया गया है जब तक निम्नलिखित अवयव संतुष्ट न हो जाए।''

(1) गलत या भ्रामक अभ्यावेदन करके या अन्य क्रिया या लोप द्वारा किसी व्यक्ति को प्रवंचना देना;

(2) किसी व्यक्ति को कपटपूर्वक से या बेईमानी से कोई संपत्ति परिदत्त करने के लिए उत्प्रेरित करना; या

(3) यह सहमति देना कि कोई भी व्यक्ति किसी भी संपत्ति को अपने पास रखेगा और अंत में जानबूझकर उस व्यक्ति को ऐसा करने या लोप के लिए उत्प्रेरित करना, कुछ भी करने के लिए जो वह नहीं करेगा या लोप कर देगा।

12. छल का अपराध गठित करने के उद्देश्य से, शिकायतकर्ता को यह दिखाना आवश्यक है कि वादा या अभ्यावेदन करते समय अभियुक्त का इरादा कपटपूर्वक या बेईमानी करने का था। ऐसे मामले में भी जहां प्रारंभिक वादा करते समय, दोषयुक्त इरादे के अभाव में, अभियुक्त की ओर से अपना वादा निभाने में विफलता के संबंध में आरोप लगाए गए हैं, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनाना कहा जा सकता है।''

इसलिए, यह स्पष्ट है कि शुरू से ही दुर्व्यपदेशन छल के अपराध के गठन के लिए एक अनिवार्य शर्त है, हालांकि कुछ मामलों में, अनुबंध के गठन के बाद के चरण में छल देने का इरादा विकसित हो सकता है।

हृदय रंजन प्रसाद वर्मा व अन्य बनाम बिहार राज्य व अन्य। [(2000) 4 एससीसी 168] इस न्यायालय ने बतायाः

''14. धारा को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि परिभाषा में कृत्यों की दो अलग-अलग श्रेणियाँ निर्धारित की गई हैं, जिन्हें छल होने वाले व्यक्ति को करने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है। सबसे पहले, उसे किसी संपत्ति को किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित किया जा सकता है। धारा में निर्धारित कृत्यों की दूसरी श्रेणी में कुछ भी ऐसा कर रहा है या करने से लोप कर रहा है जिसे छलित व्यक्ति नहीं करेगा या करने से लोप जाएगा यदि उसे इस तरह प्रवंचित नहीं किया जाता। मामलों की पहली श्रेणी में उत्प्रेरण अवष्य रूप से कपटपूर्ण या बेईमान होना चाहिए। कृत्यों की दूसरी श्रेणी में, उत्प्रेरण जानबूझकर होना चाहिए लेकिन कपटपूर्ण या बेईमान नहीं होना चाहिए।

15. प्रश्न का निर्धारण करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि केवल अनुबंध के उल्लंघन और छल के अपराध के बीच का अंतर मामूली है। यह अभियुक्त के प्रवंचन देने के समय के आशय पर निर्भर करता है, जिसका आकलन उसके बाद के आचरण से किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए बाद का आचरण ही एकमात्र परीक्षण नहीं है। केवल अनुबंध का उल्लंघन छल के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता है जब तक कि लेनदेन की शुरुआत में कपटपूर्वक या बेईमानी का आशय नहीं दिखाया जाता है, यही वह समय है जब कि अपराध किया गया माना जाता है। इसलिए यह आशय ही है जो अपराध का सार है। किसी व्यक्ति को छल का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि वादा करते

समय उसका इरादा कपटपूर्वक या बेईमानी का था। वादा पूरा करने में केवल उसकी असफलता के कारण शुरुआत में ही, अर्थात् जब उसने वादा किया था, ऐसा दोषपूर्ण आशय नहीं माना जा सकता है।''

[इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य (2006) 6 एससीसी 736, वीर प्रकाश शर्मा बनाम अनिल कुमार अग्रवाल व अन्य 2007 (9) एससीएएलई 502, वी.वाई. जोस (सुप्रा) तथा रवींद्र कुमार मधनलाल गोयनका व अन्य बनाम एम/एस रूग्मिनी राम राघव स्पिनर्स व अन्य 2009 (6) एससीएएलई 162, भी देखें।]

23. भारतीय दंड संहिता की धारा 463 निम्नानुसार पढी जाती है

''कूट रचना

जो कोई, किसी मिथ्या दस्तावेज या मिथ्या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अथवा दस्तावेज या इलैक्ट्रानिक अभिलेख के किसी भाग को इस आशय से रचता है कि लोक को या किसी व्यक्ति को नुकसान या क्षति कारित की जाए, या किसी दावे या हक का समर्थन किया जाए, या यह कारित किया जा कि कोई व्यक्ति संपत्ति अलग करे या कोई अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा करे या इस आशय से रचता है कि कपट करे, या कपट किया जा सके, वह कूटरचना करता है।

श्री दास के अनुसार, स्वामित्व पर किसी भी दावे का समर्थन करने के लिए एक मिथ्या दस्तावेज़ बनाना उक्त प्रावधान के अर्थ के भीतर कूट रचना का गठन होगा और जैसा कि अपीलकर्ताओं द्वारा संयुक्त संपत्ति में

एक तिहाई हिस्सा दिखाने के उद्देश्य से एक दस्तावेज़ बनाया गया था जबकि वे इसके हकदार नहीं थे, इसलिए उन्हें अपराध करने वाला माना जाना चाहिए।

कूट रचना की परिभाषा के मद्देनजर, कोई भी मिथ्या दस्तावेज़ बनाना अनिवार्य शर्त है। मिथ्या दस्तावेज़ बनाना क्या होगा, यह धारा 464 में निर्दिष्ट है।

इसलिए, किसी दस्तावेज़ को इस आषय से निष्पादित करना आवश्यक है कि यह विश्वास दिलाया जाए कि ऐसा दस्तावेज़ अन्य बातों के साथ-साथ उस व्यक्ति के प्राधिकार द्वारा बनाया गया था जिसके द्वारा या जिसके प्राधिकार द्वारा वह जानता है कि यह नहीं बनाया गया था।

24. अपीलकर्ता संपत्ति के मालिक हैं। वे एक विक्रय विलेख/डीड निष्पादित कर चुके है। विक्रय विलेख/डीड के निष्पादन से इनकार नहीं किया गया है। यदि कोई उक्त विक्रय विलेख/डीड में किए गए झूठे दावों से व्यथित है, तो वे विक्रेता होगें, न कि सह-हिस्सेदार।

अपीलकर्ताओं पर कोई मिथ्या दस्तावेज सृजित करने का दोषी होने का आरोप नहीं लगाया गया है।

25. श्री दास द्वारा ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य [(1999) 8 एससीसी 686] पर भरोसा रखा गया है, जिसमें इस न्यायालय ने माना था कि किसी शिकायत को रद्द करना बहुत चरम

स्थितियों तक ही सीमित होना चाहिए। कानूनी स्थिति को लेकर कोई विवाद नहीं है।

कमलादेवी अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य[(2002) 1 एससीसी 555] पर भी भरोसा रखा गया है। जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

''9. आपराधिक अभियोजन को शुरुआति चरण में केवल इसलिए ही विफल नहीं किया जा सकता क्योंकि सिविल कार्यवाही भी लंबित है...

15. हमने पहले ही देखा है कि सिविल और आपराधिक कार्यवाही की प्रकृति और दायरा और दोनों मामलों में आवश्यक सबूत के मानक अलग और विशिष्ट हैं। जबकि सिविल कार्यवाही में मामले का निर्णय संभावनाओं के आधार पर किया जा सकता है, आपराधिक मामले का निर्णय ''उचित संदेह से परे'' के प्रमाण के मानक को अपनाकर ही करना होता है।....''

17... हम इस तर्क से भी प्रभावित नहीं हैं कि चूंकि सिविल मुकदमा उच्च न्यायालय में लंबित था, इसलिए मजिस्ट्रेट के लिए आपराधिक मामले को कानून या औचित्य के आधार पर आगे बढ़ाना उचित नहीं था। आपराधिक मामलों को दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार आगे बढ़ाना होता है तथा एक अन्य न्यायालय में भले ही वह स्थिति और अधिकार में उच्च हो, सिविल मामले का लम्बित होने को कार्यवाही रद्द करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

7. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि प्रारंभिक चरण में कार्यवाही को रद्द करने की पुनरीक्षण या अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम से तथा केवल वहीं किया जाना चाहिए, जहां शिकायत या एफआईआर में लगाए गए आरोप, भले ही उनके अंकित मूल्य पर लिए गए हों और संपूर्ण रूप से स्वीकार किए गए हों, किसी अपराध के घटित होने का प्रथम दृष्टया खुलासा नहीं करते है। विवादित एवं विवादस्पद तथ्यों को क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता।"

हालाँकि, हम देख सकते हैं कि उक्त निर्णय को हाल ही में इस न्यायालय द्वारा महेश चौधरी बनाम राजस्थान राज्य व अन्य [2009 (4) एससीसी 66] में विचार में लिया गया है। जिसमें यह देखा गयाः

''हाल ही में आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता व अन्य. 2008 (14) एससीएएलई 85 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित शर्तों में कानून निर्धारित कियाः

9. उक्त निर्णय से निकलने वाली विधि के प्रस्ताव हैः

(1) उच्च न्यायालय सामान्यतः किसी आपराधिक कार्यवाही और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा, जब तक कि उसमें निहित आरोप, भले ही यदि दिया गया अंकित मूल्य और उनकी सम्पूर्णता में सही माना गया हो, कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हो।

(2) उक्त उद्देश्य के लिए, न्यायालय, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर या उनके बिना, बचाव पक्ष द्वारा संदर्भित किए गए किसी भी दस्तावेज़ पर गौर नहीं करेगा।

(3) ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित ढंग से किया जाना चाहिए। यदि एफआईआर में लगाए गए आरोप किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं, तो न्यायालय इससे परे नहीं जा सकता तथा अभियुक्त के पक्ष में किसी भी आपराधिक मनःस्थिति या आपराधिक कृत्य के अभाव होने का आदेश पारित नहीं करेगा।

(4) यदि आरोप एक सिविल विवाद का खुलासा करता है, तो यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं हो सकता है कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

10. यह भी सर्वविदित है कि कोई भी कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार करना होता है। न्यायालय, अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, हालांकि उस उद्देश्य तथा उद्देश्य जिसके लिए संसद द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 और 483 के प्रावधान पेष किये गये थे, को ध्यान में रखते हुए किसी असल शिकायत में हस्तक्षेप नहीं करेगा, परन्तु उचित मामलों मे अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में संकोच नहीं करेगा। उच्चतर न्यायालयों के सर्वोपरि कर्तव्यों में से एक यह देखना है कि जो

व्यक्ति स्पष्ट रूप से निर्दोष है, वह झूठी और पूरी तरह से अपुष्ठ शिकायत के आधार पर अभियोजन तथा अपमान का शिकार ना हो।

16. हमारी राय में, आरोप-पत्र प्रथम दृष्टया अपराध के घटित होने का खुलासा करता है। अनुसंधान अधिकारी द्वारा निष्पक्ष अनुसंधान की गई। आरोप-पत्र विस्तृत है। यदि प्रसंज्ञान का कोई आदेश विद्वान मजिस्ट्रेट पर या उनके आधार पर भरोसा करते हुए पारित किया गया है, तो हमारी राय में, उस पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। इसलिए, हमें आक्षेपित आदेशों में कोई कानूनी खामी नहीं मिलती है।''

26. कानून के उपरोक्त प्रस्तावों के संबंध में कोई विवाद नहीं है। हालाँकि, अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि उच्च न्यायालय सामान्यतः आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, भले ही दिये गये अंकित मूल्य तथा पूरी तरह से सही माने गए हों, कोई अपराध नहीं बनाता है। जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप या अनुसंधान के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के अवयवों को संतुष्ट नहीं करते हो, तो उच्चतर न्यायालयें बिना किसी कारण के आपराधिक न्यायालयों में किसी व्यक्ति के उत्पीड़न को प्रोत्साहित नहीं करेंगी।

27. इसके अलावा, श्री दास का तर्क होगा कि उच्च न्यायालय का दिनांक 17.10.2005 का आदेश रेस जूडिकेटा के रूप में कार्य करेगा।

सम्मान के साथ, हम उक्त दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर सकते। आपराधिक कार्यवाही में रेस जूडिकेटा के सिद्धांत का कोई उपयोग नहीं होता है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में उल्लेखित रेस जूडिकेटा के सिद्धांत या उसके सामान्य सिद्धांत इस प्रकृति के मामले में लागू नहीं होंगे।

28. उच्च न्यायालय ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने से इनकार कर दिया है क्योंकि उसके लिए एक अलग मानक लागू करना आवश्यक था। हालाँकि, जब सामग्री एकत्रित की जाती है और उसके आधार पर आरोप पत्र दायर किया जाता है, जिसके आधार पर मजिस्ट्रेट अपराध का प्रसंज्ञान लेता है, तो इससे कार्यवाही के एक नये वाद कारण का उदय होगा। अनुसंधान अधिकारी द्वारा दायर आरोप पत्र के आधार पर किसी अपराध का प्रसंज्ञान लेने और/या शिकायत याचिका पर समन जारी करने का निर्देश देने वाला आदेश, निर्विवाद रूप से, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के प्रावधानों को आकर्षित करेगा यदि कोई मामला उसके आह्वान के लिए बनाया गया हो।

29. श्री दास प्रस्तुत करते है कि किसी व्यक्ति की ओर से की गई गलती सिविल दोष या आपराधिक दोष हो सकती है, हालांकि किसी व्यक्ति की ओर से किया गया लोप या कृत्य सिविल कार्यवाही तथा आपराधिक कार्यवाही दोनों का उदय कर सकता है। सिविल दोष तथा आपराधिक दोष के बीच अंतर अवष्य किया जाना चाहिए। जब पक्षों के बीच विवाद केवल एक सिविल दोष है और आपराधिक दोष नहीं है, तो न्यायालय किसी

व्यक्ति को परेशान करने की अनुमति नहीं देंगी, जहां अपराध का प्रसंज्ञान लेने का कोई मामला नहीं बनाया गया है।

30. इसके अलावा, इस प्रकृति के एक मामले में, जहां यद्यपि, श्री दास के अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध का प्रसंज्ञान लेने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है, यह मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का आरोप पत्र की विषयवस्तु पर अपना विवेक लगाने की ओर अनिवार्य था। उनकी ओर से इस तरह उनके विवेक का इस्तेमाल आदेश से प्रतिबिंबित होना चाहिए था। [कर्नाटक राज्य व अन्य बनाम पादरी पी. राजू (2006) 6 एससीसी 728 तथा दिनांक 10 दिसंबर, 2007 को निर्णित क्रिमीनल अपील संख्या 1692/2007 पवन कुमार शर्मा बनाम उत्तरांचल राज्य को देखें।]

31. हालाँकि, हमें यह रिकॉर्ड पर रखना आवष्यक है कि हमने विवाद के गुण-दोष में प्रवेश नहीं किया है क्योंकि सिविल मुकदमा लंबित है। इसे विधि के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। हम संबंधित न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि वह सिविल मुकदमे को यथासंभव शीघ्रता से निपटाने की वांछनीयता पर विचार करें।

32. उपरोक्त निर्देशों के साथ अपील स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकार

यह अनुवाद आर्टिफिषियन इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री अय्यूब खान (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।